

[2016 ] 8 एस. सी. आर 84

भारत संघ और अन्य

बनाम

देवजी मिश्रा

(2013 की दीवानी अपील संख्या 823)

सितंबर 27, 2016

[टी. एस. ठाकुर, भारत के मुख्य न्यायाधीश और ए. एम. खानविलकर, न्यायमूर्ति]

सेवा कानून:

सशस्त्र बल कार्मिक - बर्खास्तगी - उत्तरदाता ने वायु सेना में कॉर्पोरल के रूप में काम किया - छुट्टी की अवधि से अधिक रुके - विभागीय कार्रवाई की गई - सैन्य न्यायालय कार्यवाही में, उत्तरदाता ने अपराध स्वीकार कर लिया - सेवा से बर्खास्त कर दिया - उत्तरदाता ने विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की और उन्होंने कहा कि उन्होंने कभी भी अपराध स्वीकार नहीं किया और उन्हें स्वीकारोक्ति करने के लिए मजबूर किया गया - उच्च न्यायालय ने बर्खास्तगी के आदेशों को इस आधार पर अभिखंडित कर दिया कि वे आदतन पलायन करने वाले नहीं थे; कि उन्होंने कभी भी अपना अपराध स्वीकार नहीं किया; कि उन्हें उनके वरिष्ठों ने दोष स्वीकार करने के लिए दबाव डाला था; और यह कि उन्हें वायु सेना अधिनियम की धारा 107 और भारतीय संविधान की धारा 21, 22 का उल्लंघन करते हुए एक कोठरी में अवैध रूप से कैद कर दिया गया था - अपील पर, अभिनिर्धारित किया गया: अभिलेख साबित करते हैं कि उत्तरदाता अपनी शादी के बाद छुट्टी की अवधि से अधिक समय तक रहा और उत्तरदाता को अतीत में भी इसी तरह के कदाचार के लिए कार्रवाई का सामना करना पड़ा था - सैन्य न्यायालय कार्यवाही से पता चला कि उत्तरदाता ने स्वेच्छा से पूरी समझ के साथ आरोपों पर अपना अपराध स्वीकार किया और उसे अपने रुख पर पुनर्विचार करने और अपना बचाव करने का अवसर दिए जाने के बावजूद, उसने अपना इकबालिया

बयान नहीं बदला और एक असैनिक अधिवक्ता रखने से भी इनकार कर दिया - इसलिए, अधिकारियों द्वारा सैन्य न्यायालय की कार्यवाही में इकबालिया बयान को उचित रूप से दर्ज किया गया था - विनिर्दिष्ट आदेश आवेदन के प्रति शपथपत्र में, अधिकारियों ने स्पष्ट रूप से इस बात से इनकार किया कि उत्तरदाता को स्वीकारोक्ति देने के लिए मजबूर किया गया था - हालांकि, उच्च न्यायालय द्वारा इसे ध्यान में नहीं रखा गया था - इसके अलावा, विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के साथ संलग्न दस्तावेज जो यह पुष्टि करता है कि उत्तरदाता पर उसके वरिष्ठों द्वारा दबाव डाला गया था, सैन्य न्यायालय कार्यवाही का हिस्सा नहीं था और इसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था - साथ ही, उच्च न्यायालय द्वारा कोई कारण नहीं दिया गया कि कैसे वायु सेना अधिनियम की धारा 107 ने उत्तरदाता के खिलाफ जांच को कैसे प्रभावित कर दिया - उच्च न्यायालय ने सक्षम प्राधिकारी के आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करके स्पष्ट त्रुटि की है - वायु सेना अधिनियम, 1950 - धारा 39(ए) (बी), 161, 107 - भारत का संविधान- अनुच्छेद 21 , 22।

अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित: 1. जहाँ तक पहले कारण का संबंध है, उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश इस तथ्य का संदर्भ देता है कि उत्तरदाता को अतीत में इसी तरह के कदाचार के लिए कार्रवाई का सामना करना पड़ा था। दिए गए साक्ष्य का विश्लेषण न केवल उत्तरदाता द्वारा अपराध की स्वीकृति के संबंध में है, बल्कि अन्य पहलुओं के संबंध में भी है। यही कारण है कि एकल न्यायाधीश न्यायिक जांच की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता है। [कंडिका 9] [91-जी-एच; 92-ए, ई]

2. दूसरा कारण जो एकल न्यायाधीश के पक्ष में था, वह यह था कि उत्तरदाता द्वारा विनिर्दिष्ट आदेश आवेदन में दिए गए कथन निर्विवाद रहे। यह प्रतिपादन अभिलेख के अवलोकन मात्र से स्पष्ट होने वाली त्रुटि है। प्रति शपथपत्र के कंडिका में दिए गए कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपीलार्थियों ने विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में उत्तरदाता द्वारा बताए

गए इस तथ्य को चुनौती दी थी कि उसे अपना इकबालिया बयान देने के लिए मजबूर किया गया था। एकल न्यायाधीश ने यह मानने में गंभीर त्रुटि की कि अपीलार्थियों ने विनिर्दिष्ट आदेश आवेदन में उत्तरदाता द्वारा किए गए दावे पर विवाद या विरोध नहीं किया था। उच्च न्यायालय ने अपीलार्थियों द्वारा की गई याचिका पर पूरी तरह से प्रकाश डाला गया कि पत्र/दस्तावेज, जिसमें उत्तरदाता ने एक निजी अधिवक्ता को शामिल करने के लिए कहा था, सैन्य न्यायालय कार्यवाही का हिस्सा नहीं था। दूसरी ओर, सैन्य न्यायालय कार्यवाही के अभिलेख से केवल यह पता चला कि उत्तरदाता ने न केवल स्वेच्छा से पूरी समझ के साथ और दोनों आरोपों को जानने के साथ अपना अपराध स्वीकार किया बल्कि, इसके परिणामस्वरूप; उन्हें अपने रुख पर पुनर्विचार करने का अवसर दिए जाने के बावजूद, उन्होंने अपनी स्वीकारोक्ति नहीं बदली। इसलिए, इसे उत्तरदाता को कोई राहत देने का आधार नहीं बनाया जा सकता, सैन्य न्यायालय कार्यवाही के संचालन में शामिल अधिकारियों की *सद् भावना* पर संदेह करना तो दूर की बात है। इस बात का कोई ठोस स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि किस बात ने उत्तरदाता को सैन्य न्यायालय कार्यवाही में या कम से कम अधिनियम की धारा 161 के तहत सक्षम प्राधिकारी के समक्ष उसके द्वारा की गई अपील में इस संचार का उल्लेख करने से रोका। क्योंकि, इस तरह की विलंबित याचिका पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिए, वह भी आकस्मिक तरीके से। इसके अलावा, उत्तरदाता को मूल प्रति प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था, जो उसने कभी नहीं किया। [कंडिका 10,11] [92-एफ; 93-बी; 95-ए-एफ]

3. उच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तुत अंतिम/चौथा कारण भी तथ्यहीन है। एकल न्यायाधीश ने केवल धारा 107 का उल्लेख किया है, उच्च न्यायालय द्वारा कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है कि उत्तरदाता के खिलाफ जांच धारा 107 से कैसे प्रभावित की गई थी। एकल न्यायाधीश ने यह टिप्पणी की थी कि उत्तरदाता को कोठरी में रखना इस प्रावधान के विरुद्ध है, तथा आगे कहा था कि इससे उत्तरदाता के जीवन के अधिकार का हनन हुआ है,

तथा उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, तथा इस प्रकार यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 का उल्लंघन है। यह समझ से परे है कि वर्तमान मामले की तथ्यात्मक स्थिति में इस तर्क को कैसे कायम रखा जा सकता है। वर्तमान मामले की तथ्यात्मक स्थिति के अनुसार, उच्च न्यायालय ने सक्षम प्राधिकारी के उस निर्णय में हस्तक्षेप करके स्पष्ट त्रुटि की है, जिसमें उत्तरदाता को उन दो आरोपों के लिए सजा और दण्ड दिया गया था, जिनके संबंध में उसने दोष स्वीकार किया था। [ कंडिका 12,14] [96-बी, एफ-जी; 97-ई]

4. कदाचार जिसके लिए उत्तरदाता को सजा और दण्ड दिया गया था, उसके द्वारा की गई अपनी तरह की पहली घटना नहीं है। अतीत में भी वह इसी तरह के कदाचार में लिप्त रहा है। इसके अलावा, उत्तरदाता ने अतीत में भी अपने वरिष्ठों के खिलाफ लापरवाह और तुच्छ आरोप लगाए थे और वह वायुसेना में सेवा करने के प्रति पर्याप्त गंभीर नहीं था। अपनी शादी तय होने के बाद वह छुट्टी की अवधि से अधिक समय तक इस आधार पर रहे कि वह अस्वस्थ थे और उनका चिकित्सा उपचार चल रहा था। सक्षम प्राधिकारी ने सभी उपस्थित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बर्खास्तगी की सजा देने का फैसला किया। उस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा व्यक्तिपरक संतुष्टि प्राप्त की जाती है। [कंडिका 15] [97-जी-एच; 98-ए]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2013 की दीवानी अपील सं. 823

2008 के लेटर पेटेंट अपील सं. 995 में पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के निर्णय और आदेश से।

अपीलार्थियों के लिए अधिवक्ता आर. बाला सुब्रमण्यन, अनन्या मिश्रा, प्रणव कुमार, एम. के. मारोरिया, संतोष कुमार, स्वरूपमा चतुर्वेदी, श्रीमती अनिल कटियार।

उत्तरदाता के लिए अधिवक्ता शिशिर पिनाकी, राजीव कुमार सिन्हा, समीर अली खान।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

ए. एम. खानविलकर, न्यायमूर्ति 1. यह अपील 2008 के लेटर पेटेंट अपील सं. 995 में पटना में उच्च न्यायालय की खंडपीठ के 23 जून, 2009 के निर्णय को चुनौती देती है। उस निर्णय द्वारा खंड पीठ ने 15 जुलाई, 2008 को तय किए गए 2005 के सीडब्ल्यूजेसी सं.6289 में उसी उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश की पुष्टि करते हुए अपीलार्थियों द्वारा की गई अपील का निपटारा कर दिया।

2. संक्षेप में कहा गया है कि संबंधित समय में उत्तरदाता वायु सेना की 27 वीं शाखा में कॉर्पोरल के पद पर काम कर रहा था और गुजरात राज्य में वायु सेना के भुज स्टेशन पर तैनात था। अवकाश अवधि से अधिक समय तक रुकने के कारण उनके विरुद्ध विभागीय कार्रवाई की गई। दिनांक 18 जून 2004 को उन पर आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जो इस प्रकार है:-

### आरोप पत्र

आरोपी, 722779 एच कॉपल मिश्रा डी एमटी टेक, 27 विंग वायु सेना जो नियमित वायु सेना का एक विमान-चालक है, पर आरोप लगाया गया है कि :-

### पहला आरोप

#### धारा 39 (बी) वायुसेना अधिनियम 1950

बिना किसी पर्याप्त कारण के उसे दी गई छुट्टी से अधिक समय तक रुकना

उस में वह,

27 विंग पर। वायुसेना को 12 अप्रैल 03 से 27 अप्रैल 03 तक की छुट्टी दी गई थी, तथा वह बिना किसी पर्याप्त कारण के उक्त छुट्टी से अधिक समय तक रुका रहा, जब तक कि उसने 20 मार्च 2004 को सुबह 10:00 बजे वायुसेना के 27 विंग के मुख्य गार्ड रूम में 629555 सार्जेंट सिंह आरके भारतीय वायु सेना/पुलिस के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं कर दिया।

### दूसरा आरोप

धारा 39 (ए) ए. एफ अधिनियम 1950बिना छुट्टी के अनुपस्थित रहना

उस में वह,

27 विंग, वायुसेना में 22 मार्च 04 को सुबह 07:30 बजे से बिना छुट्टी के अनुपस्थित रहा, जब तक कि उसे 6 एफ और एस डीट के 629394 सार्जेंट सुनील पी भारतीय वायु सेना/पुलिस और 795130 कॉर्पोरल सिंह ए भारतीय वायु सेना/पुलिस द्वारा जगतपुर गांव, परशुरामपुर डाक, कृष्णागढ़ थाना, भोजपुर जिला, बिहार में 30 अप्रैल 04 को सुबह 10:00 बजे गिरफ्तार नहीं कर लिया गया।

(वी गौर)

स्थान : 27 विंग, वायुसेना

विंग कमांडर

दिनांक: 08 जून 04

स्टेशन कमांडर

27 विंग, वायुसेना

3. उक्त आरोप पत्र के आधार पर उत्तरदाता के विरुद्ध जिला सैन्य न्यायालय की कार्यवाही प्रारंभ हुई। विंग कमांडर श्री ए. डी. उपाध्याय ने पीठासीन अधिकारी के रूप में कार्य किया। उक्त कार्यवाही में, उत्तरदाता ने दोनों आरोपों को स्वीकार किया। अपने कबूलनामे पर पुनर्विचार करने का अवसर दिए जाने के बाद भी, उत्तरदाता ने अपने कबूलनामे को बनाए रखा। यह कार्यवाही और समकालीन अभिलेख से समझा जा सकता है। अंततः, उनके विरुद्ध तीन महीने के कठोर कारावास की सजा की सिफारिश की गई, जिसके बाद सेवा से बर्खास्तगी और पद में कमी भी की जाएगी। 25 जून, 2004 को न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों और सजा की पुष्टि सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई, लेकिन कठोर कारावास के उस हिस्से को माफ कर दिया गया जो रिहाई की तारीख तक समाप्त नहीं हुआ था। उस आधार पर उत्तरदाता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। 2 जुलाई, 2004 को उत्तरदाता को कार्यवाहियों के विषय वस्तु के बारे में समझाया गया था, जिसे उत्तरदाता द्वारा स्वीकार किया

गया है।

4. इसके बाद उत्तरदाता ने दिनांक 17 जून, 2004 के जिला सैन्य न्यायालय आदेश के विरुद्ध वायु सेना अधिनियम 1950 की धारा 161 के अंतर्गत 11 अक्टूबर, 2004 को एयर चीफ मार्शल को संबोधित आवेदन प्रस्तुत किया। उत्तरदाता को 12 जनवरी, 2005 को विंग कमांडर, कार्यवाहक निदेशक, व्यक्तिगत सेवाएँ, वायु अधिकारी-प्रभारी प्रशासन के हस्ताक्षर से जारी पत्र द्वारा सूचित किया गया कि उसके आवेदन पर विचार किया गया और उसे अस्वीकार कर दिया गया है।

5. असंतुष्ट होकर, उत्तरदाता ने उच्च न्यायालय में एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की जैसा कि ऊपर बताया गया है। अपीलार्थियों ने एक विस्तृत प्रति शपथपत्र दाखिल करके उस विनिर्दिष्ट आदेश याचिका का विरोध किया तथा इस तथ्य को दोहराया कि उत्तरदाता ने दोनों आरोपों के लिए अपना दोष स्वीकार कर लिया था, जिसके परिणामस्वरूप उसे सजा सुनाई गई तथा सेवा से बर्खास्त करने का आदेश दिया गया। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को चार बिंदुओं पर विचार करते हुए स्वीकार कर लिया। सबसे पहले, कि आक्षेपित आदेश इस तथ्य का कोई संदर्भ नहीं देता है कि उत्तरदाता एक आदतन पलायन करने वाला था या अपनी छुट्टी की अवधि से अधिक समय तक रहने का आदी था। जबकि, आदेश मुख्य रूप से उत्तरदाता द्वारा अपराध की स्वीकृति के आधार पर आगे बढ़ता है। दूसरा, अपील के ज्ञापन में और विनिर्दिष्ट आदेश आवेदन के कंडिका 26 में भी किए गए दावे - कि याचिकाकर्ता ने कभी भी अपना अपराध स्वीकार नहीं किया - अपीलार्थियों द्वारा दायर प्रति शपथपत्र में यह बात निर्विवाद रही। तीसरा, दिनांक 21 मई, 2004 - अनुलग्नक 24 (रिट कार्यवाही में) पत्र की विषय-वस्तु, स्टेशन कमांडर को उसी दिन संबोधित की गई थी जिस दिन संक्षिप्त सैन्य न्यायालय कार्यवाही प्रमाणित की गई थी (अर्थात् 21 मई, 2004 को), जिसमें इस तथ्य की शिकायत की गई थी कि उत्तरदाता पर उसके वरिष्ठों द्वारा दोष स्वीकार करने के लिए दबाव डाला जा रहा था, तथा

उसे निजी अधिवक्ता रखने की अनुमति भी दी जा रही थी। अंत में, अधिकारियों ने वायु सेना अधिनियम, 1950 की धारा 107 के उल्लंघन में जांच के दौरान उत्तरदाता को अवैध रूप से एक कोठरी में रखा था, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 का उल्लंघन करते हुए कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना उसके जीवन के अधिकार का उल्लंघन करता है। इन चार कारणों से, विद्वान एकल न्यायाधीश ने उत्तरदाता को बर्खास्त करने के लिए सैन्य न्यायालय और अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पारित 17 जून, 2004 के आदेश और 2 जुलाई, 2004 के आदेश को भी अभिखंडित कर दिया। इसके बजाय एकल न्यायाधीश ने उत्तरदाता द्वारा मांगे गए आवश्यक दस्तावेज प्रस्तुत करने और उसे अपनी पसंद के एक निजी अधिवक्ता को नियुक्त करने की अनुमति देने के बाद कानून के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए मामले को स्टेशन कमांडर को वापस भेजना उचित समझा। स्टेशन कमांडर को उत्तरदाता को उसकी सेवा में शामिल होने की अनुमति देने का निर्देश भी जारी किया गया था, लेकिन बर्खास्तगी की तारीख से इस तरह से पुनः शामिल होने तक उसके वेतन के बकाया के बारे में मुद्दा अनुशासनात्मक कार्यवाही के परिणाम के अधीन किया गया था।

6. इस निर्णय को विभाग ने लेटर्स पेटेंट अपील के माध्यम से चुनौती दी थी। खंडपीठ ने, भले ही अपीलार्थियों के इस तर्क में योग्यता पाई कि सैन्य न्यायालय कार्यवाही का संचालन करने वाले संबंधित अधिकारियों की प्रामाणिकता पर संदेह करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी, फिर भी सैन्य न्यायालय कार्यवाही को वापस करने के विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया क्योंकि यह एक सकारात्मक निष्कर्ष देने की स्थिति में नहीं था कि क्या उत्तरदाता द्वारा अवलंबित अनुलग्नक 19 और 24 जाली और मनगढ़ंत थे (जो इस तथ्य का संकेत थे कि उत्तरदाता अपना अपराध स्वीकार नहीं कर रहा था और इसके बजाय अपना बचाव करने के लिए एक निजी अधिवक्ता को नियुक्त करना चाहता था)। हालांकि, खंडपीठ ने, कहा कि उत्तरदाता उसे एक निजी अधिवक्ता

को नियुक्त करने की अनुमति देने का अनुरोध कर सकता है, जिसके अनुरोध पर कानून के अनुसार विचार किया जा सकता है। यह स्पष्ट कर दिया गया कि उत्तरदाता स्वतः ही बकाया वेतन पाने का हकदार नहीं हो जाएगा तथा यह दावा सैन्य न्यायालय कार्यवाही के अंतिम निर्णय के अधीन होगा, जिसे चार महीने के भीतर पूरा करने का आदेश दिया गया था।

7. व्यथित होकर, अपीलार्थियों ने वर्तमान अपील में विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ के उपर्युक्त निर्णयों को चुनौती दी है। अपीलार्थियों का मुख्य तर्क यह है कि जिस आधार पर विद्वान एकल न्यायाधीश ने एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप किया वह असमर्थनीय है और अभिलेख से प्रमाणित नहीं है। इसमें, बताया गया पहला कारण कार्यवाही से गलत सिद्ध होता है। दूसरा कारण कि अपीलार्थी विनिर्दिष्ट आदेश आवेदन के कंडिका 26 में दिए गए कथनों का खंडन करने में विफल रहे हैं, यह भी एक त्रुटि है जो अभिलेख में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने विनिर्दिष्ट आदेश याचिका का विरोध करने के लिए अपीलार्थियों की ओर से दायर जवाब और आगे के शपथ पत्र का उचित परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करने में विफल रहे, जिसमें न केवल सैन्य न्यायालय कार्यवाही में उल्लिखित तथ्यों को दोहराया गया कि उत्तरदाता ने अपने द्वारा लिए गए रुख की पूरी समझ के साथ अपना अपराध स्वीकार किया और अधिकारियों द्वारा इसके परिणाम के बारे में विधिवत समझाया गया था। उन्हें प्रासंगिक समय पर एक विधि-योग्य अधिकारी की सहायता भी उपलब्ध कराई गई। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अनुलग्नक 24 के आधार पर दिया गया तीसरा कारण भी स्पष्टतः गलत था। इसमें, उक्त दस्तावेज सैन्य न्यायालय कार्यवाही का हिस्सा नहीं था। इसके अलावा, उत्तरदाता ने किसी भी अधिकारी का नाम नहीं लिया था जिसके खिलाफ उस पर अपना अपराध स्वीकार करने के लिए दबाव डालने का आरोप न तो विषय दस्तावेज में, न ही सक्षम प्राधिकारी को उसके द्वारा प्रस्तुत समकालीन प्रतिनिधित्व/अपील में और न ही विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में लगाया गया हो। यह तथ्य कि अनुलग्नक 19 और 24 सैन्य न्यायालय कार्यवाही का हिस्सा नहीं थे, मूल अभिलेख के

अवलोकन के बाद खंडपीठ द्वारा सकारात्मक जवाब दिया गया है। उन दस्तावेजों को पहली बार प्रति शपथपत्र के साथ दाखिल किया गया था। अपीलार्थियों ने उक्त दस्तावेजों की वास्तविकता पर भी संदेह जताया था, क्योंकि प्राधिकृत अधिकारी के शपथ पत्र में बताए गए कारणों से ये दस्तावेज जाली थे। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने उन मामलों का बिल्कुल भी विश्लेषण नहीं किया है। इसमें, उत्तरदाता ने न्यायालय का रुख अस्वच्छ आचरण से किया था और वह छल-कपट व भ्रम उत्पन्न करने में सफल रहा तथा दो आरोपों के संबंध में अपनी बिना शर्त और स्वेच्छा से स्वीकार की गई दोष-स्वीकृति के बावजूद, नए सैन्य न्यायालय की कार्यवाही कराने का राहत आदेश प्राप्त कर ले गया। खंडपीठ ने पाया कि सैन्य न्यायालय कार्यवाही का संचालन करने वाले अधिकारियों की सद्भावना पर संदेह नहीं किया जा सकता है, इसलिए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा जारी निर्देश को उलट दिया जाना चाहिए था। अपीलार्थियों के अनुसार, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा बताया गया चौथा कारण भी असमर्थनीय है। इस प्रकार, यह उत्तरदाता द्वारा हिरासत में दिए गए इकबालिया बयान का मामला नहीं है, जो कानूनन अस्वीकार्य हो सकता है। वर्तमान मामले में, उत्तरदाता ने सैन्य न्यायालय कार्यवाही के दौरान इकबालिया बयान दिया था, और जिसे अभिलेख में दर्ज करने और उस पर कार्रवाई करने का अधिकार है। यह तथ्य कि प्रासंगिक समय पर उत्तरदाता को एक कोठरी में रखा गया था, स्वीकारोक्ति को अस्वीकार्य नहीं बनाएगा। विशेषकर, जब समकालीन अभिलेख से पता चलता है कि उत्तरदाता को अपने रुख पर पुनर्विचार करने के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया था, तथा उसे ऐसी स्वीकारोक्ति से उत्पन्न होने वाले परिणामों के बारे में समझाया गया था। न्यायाधीश अधिवक्ता ने स्वयं को आश्चस्त किया कि उत्तरदाता द्वारा दी गई स्वीकारोक्ति स्वैच्छिक है, उसी आधार पर मामले में आगे बढ़े। इसलिए यह न तो अस्वीकार्य स्वीकारोक्ति का मामला था और न ही उत्तरदाता को अवैध रूप से हिरासत में रखने का। यहां तक कि खंडपीठ ने भी इन महत्वपूर्ण पहलुओं को पूरी तरह से दरकिनार कर दिया है और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित त्रुटिपूर्ण आदेश की पुष्टि की है।

अपीलार्थियों के अनुसार, वर्तमान मामले की तथ्य स्थिति में, उच्च न्यायालय ने उत्तरदाता के खिलाफ सैन्य न्यायालय कार्यवाही में लगाई गई सजा के आदेश में हस्तक्षेप करने में स्पष्ट त्रुटि की। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दर्ज किए गए और खंडपीठ द्वारा पुष्टि किए गए कारण, कम से कम यह तो कहा ही जा सकता है कि अभिलेख के सामने त्रुटि स्पष्ट है, यदि विकृत नहीं है।

8. दूसरी ओर, उत्तरदाता के अधिवक्ता ने विद्वान एकल न्यायाधीश के साथ-साथ खंडपीठ के फैसले का समर्थन किया है। उनके अनुसार, उत्तरदाता द्वारा अनुलग्नक 19 और 24 के रूप में प्रस्तुत दस्तावेज इस तथ्य को पुष्ट करते हैं कि उत्तरदाता से संबद्ध दोष स्वीकारोक्ति उससे बलपूर्वक प्राप्त की गई थी। यह कोई स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति नहीं थी। इसके अलावा, उत्तरदाता को उसके वरिष्ठों द्वारा पीड़ित किया जा रहा था और जिन्होंने उसे यह स्वीकारोक्ति देने के लिए गुमराह किया। उन्होंने दलील दी कि उत्तरदाता द्वारा प्रस्तुत चिकित्सीय अभिलेख बीमारी के कारण प्रासंगिक अवधि के दौरान उनकी अनुपस्थिति को उचित ठहराता है। उत्तरदाता के उस अभिलेख को प्रस्तुत करने के बाद, उसके खिलाफ बनाए गए दो आरोपों को स्वीकार करने का कोई कारण नहीं था। उत्तरदाता की बीमारी ने उसे अपनी छुट्टी की अवधि से अधिक रहने के लिए मजबूर कर दिया। उत्तरदाता ने पहले अवसर पर स्वयं ही आत्मसमर्पण कर दिया था, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तरदाता का अपनी सेवा पुनः शुरू करने का इरादा था। दूसरे अवसर पर, उत्तरदाता को फंसाया गया और उसके गृह नगर से गिरफ्तार दिखाया गया। इसके अलावा, उत्तरदाता ने अपने वरिष्ठों पर विश्वास करते हुए अपना बयान दिया। उत्तरदाता के पास कोई अन्य विकल्प नहीं था क्योंकि उसे संबंधित अवधि के दौरान एक कोठरी में रखा गया था। उत्तरदाता के अनुसार, इसलिए, पर्याप्त न्याय करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित न्यायसंगत आदेश के खिलाफ इस अपील में कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को विस्तार से सुनने के बाद, हम पहले विद्वान एकल

न्यायाधीश द्वारा उल्लिखित और उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पुष्टि किए गए चार कारणों पर विचार कर सकते हैं। जहाँ तक पहले कारण का संबंध है, हम अपीलार्थियों द्वारा अपनाए गए तर्क में योग्यता पाते हैं कि अभिलेख के आधार पर यह त्रुटि स्पष्ट है। आक्षेपित आदेश में इस तथ्य का उल्लेख किया गया है कि उत्तरदाता को अतीत में इसी प्रकार के कदाचार के लिए कार्रवाई का सामना करना पड़ा था, जैसा कि कंडिका 6 से देखा जा सकता है, जो इस प्रकार है:-

"न्यायालय ने अभियुक्त आईएफएफएफ(पी)-1655(संशोधित)(प्रदर्श-'जे') के चरित्र एवं सेवा विवरण का परीक्षण किया, जिससे यह पता चलता है कि अभियुक्त की आयु लगभग 31 वर्ष 5 माह है और उसने लगभग 13 वर्ष 4 माह की सेवा की है। उनके आचरण पत्र से पता चलता है कि सजा प्रविष्टियां हैं, जिनमें से दो अनुपस्थिती बिना अनुमति (एडब्ल्यूएल) के लिए 17 दिनों और 19 दिनों के लिए समान प्रकृति की हैं और एक इकाई एफआईसी की उपेक्षा करके खोने के लिए है। आरोपी पर पहले भी 75 दिनों तक एडब्ल्यूएल के अपराध के लिए डीसीएम द्वारा मुकदमा चलाया गया था और उसे तीन महीने की नजरबंदी और रैंक में कटौती की सजा सुनाई गई थी। न्यायालय ने अभियुक्त को निम्नलिखित सजा सुनाईः.

(ए) तीन महीने तक कठोर कारावास भुगतना;

(बी) सेवा से बर्खास्त किया जाना; और

(सी) रैंक कम किया जाना।

(जोर दिया गया)

इसमें साक्ष्य का विश्लेषण न केवल उत्तरदाता द्वारा अपराध स्वीकार करने के संबंध में है, बल्कि अन्य पहलुओं के संबंध में भी है। इसलिए विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष यह तर्क न्यायिक जाँच की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता।

10. दूसरा कारण जो विद्वान एकल न्यायाधीश के पक्ष में था, वह यह था कि

उत्तरदाता द्वारा विनिर्दिष्ट आदेश आवेदन के कंडिका 26 में दिए गए कथन निर्विवाद रहे। हमारी राय में, यह निष्कर्ष भी अभिलेख के आधार पर स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण है। उच्च न्यायालय ने संभवतः केवल प्रति शपथपत्र के कंडिका 21 का उल्लेख करते हुए स्पष्ट त्रुटि की। दूसरी ओर, उच्च न्यायालय को समग्र रूप से प्रति शपथपत्र में कथनों का मूल्यांकन करना चाहिए था। अपीलार्थियों द्वारा दायर प्रति शपथपत्र में दिए गए कथनों का सार यह था कि साक्ष्य का सारांश सैन्य न्यायालय कार्यवाही के दौरान दर्ज किया गया था, जिसमें डीसीएम द्वारा उत्तरदाता की दोष-याचिका दर्ज की गई थी। अभिलेख इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ता कि उत्तरदाता को अपना बचाव करने के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया था और इसमें उसका बचाव करने के लिए कानून योग्य अधिकारी नियुक्त करना भी शामिल था। उत्तरदाता ने स्वयं असैनिक अधिवक्ता रखने से इनकार कर दिया। विशेष रूप से, उत्तरदाता को प्राधिकरण द्वारा नियुक्त कानून योग्य अधिकारी के साथ सहायता प्रदान की गई थी, जो वायु सेना स्टेशन, भुज से नहीं बल्कि एक अन्य वायु सेना स्टेशन से थे। प्रति शपथ पत्र में उत्तरदाता की इस दलील का स्पष्ट रूप से खंडन किया गया कि उसे स्वीकारोक्ति देने के लिए मजबूर किया गया था। दूसरी ओर, यह दावा किया गया है कि मुकदमे के दौरान उत्तरदाता के इकबालिया बयान को दर्ज करने से पहले और बाद में सैन्य न्यायालय में उचित प्रक्रिया का पालन किया गया था। प्रति शपथपत्र के कंडिका 28, 29, 30, 32 और 36 में दिए गए कथन से यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाएगा कि अपीलार्थियों ने विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में उत्तरदाता द्वारा बताए गए तथ्य को चुनौती दी थी, कि उन्हें अपना इकबालिया बयान देने के लिए मजबूर किया गया था। यह इस प्रकार है:-

"28. कि कंडिका सं. 34 में दिया गया बयान खंडित किया जाता है। डीसीएम का संचालन निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार सख्ती से किया गया था। याचिकाकर्ता ने डीसीएम के समक्ष सभी आरोपों को स्वीकार कर लिया और डीसीएम द्वारा दर्ज किए गए सभी आरोपों को स्वीकार कर लिया। यह गलत है कि बचाव अधिकारी पक्षद्रोही

था। जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है, बचाव अधिकारी को एक अलग स्टेशन से चुना गया था न कि वायु सेना स्टेशन, भुज से ताकि आवेदक को एक निष्पक्ष सुनवाई दी जा सके। न्यायाधीश अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता को आरोपों की प्रकृति, अर्थ और सामग्री के बारे में समझाया, जिसका आरोपी ने सकारात्मक जवाब दिया। न्यायाधीश अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता को उसकी याचिका के सामान्य प्रभाव और दोषी की याचिका पर की जाने वाली अलग-अलग प्रक्रिया के बारे में भी सूचित किया। कंपनी ने याचिकाकर्ता से यह भी पुष्टि की कि क्या वह बिना किसी धमकी, दबाव, पदोन्नति या प्रलोभन के अपनी इच्छा से दोषी होने की दलील दे रहा था। याचिकाकर्ता ने दलील दी कि वह अपनी स्वतंत्र इच्छा से दोषी होना स्वीकार कर रहा है। बचाव पक्ष के अधिकारी ने याचिकाकर्ता को आरोप की प्रकृति, अर्थ और सामग्री तथा दोषी होने की दलील के सामान्य प्रभावों के बारे में भी बताया। याचिकाकर्ता ने आगे कहा कि, सजा कम करने के लिए अनुरोध प्रस्तुत करते हुए उसने दोषी होने की दलील दी है।

याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अनुरोध की एक प्रति अनुलग्नक 'पी' के रूप में संलग्न है 29. कंडिका संख्या 35 में दिए गए कथन का खंडन किया जाता है। याचिकाकर्ता ने साक्ष्य दर्ज करने के समय कहा कि वह बीमार था और विभिन्न समस्याओं से पीड़ित था, उसने विभिन्न डॉक्टरों से इलाज भी कराया, और स्वास्थ्य समस्याओं के कारण अपनी छुट्टी से अधिक समय तक रहा। न्यायालय ने याचिकाकर्ता का ध्यान उसके बयान की ओर आकर्षित किया और उसे सलाह दी कि यदि वह इसे अपने बचाव का आधार बनाना चाहता है तो वह दोषी होने की दलील वापस ले सकता है और निर्दोष होने की दलील दे सकता है। याचिकाकर्ता ने न्यायालय में पुष्टि की कि वह दोषी होने की अपनी याचिका वापस नहीं लेना चाहता है। इसलिए, न्यायालय ने दोषी की याचिका पर मुकदमा चलाया।

30. कि कंडिका संख्या 36 में दिए गए कथन का खंडन किया जाता है। याचिकाकर्ता ने न्यायालय की कार्यवाही की प्रति या सजा की प्रति के लिए आवेदन नहीं किया। न्यायालय की सजा से याचिकाकर्ता को खुली न्यायालय में मौखिक रूप से अवगत कराया गया था और पुष्टि के बाद, उसे उसके सीओ द्वारा घोषित किया गया था। 02 जुलाई 04 को कोठरी से रिहा होने के बाद याचिकाकर्ता वायु सेना स्टेशन, भुज से गायब हो गया और उन्होंने अपने कदम के बारे में अधिकारियों को कोई जानकारी नहीं दी।

31. ....  
.....

32. कंडिका संख्या 38 में दिए गए कथन का खंडन किया जाता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, याचिकाकर्ता को अपना बचाव करने का पूरा अवसर दिया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता ने सभी आरोपों को स्वीकार कर लिया और दोषी माना।

33. ....  
.....

34. ....  
.....

35. ....  
.....

36. कंडिका संख्या 42 में दिए गए कथन का खंडन किया जाता है। सैन्य न्यायालय पूरी तरह से प्रक्रिया के अनुसार संचालित किया गया तथा याचिकाकर्ता को अपना बचाव करने का पूरा अवसर दिया गया। याचिकाकर्ता ने स्वयं अपने बचाव के लिए एक असैनिक अधिवक्ता रखने से इनकार कर दिया था, इसलिए उसके बचाव के लिए एक विधि-योग्य अधिकारी उपलब्ध कराया गया। यह भी कहा गया है कि

याचिकाकर्ता ने अपनी स्वतंत्र इच्छा से अपना बयान दिया था और जहाँ भी उसने हस्ताक्षर किए हैं, वह बिना किसी दबाव, धमकी या वादे के किए हैं।

..... "....."

विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह मानते हुए गंभीर त्रुटि की कि अपीलार्थियों ने विनिर्दिष्ट आदेश आवेदन के कंडिका 26 में उत्तरदाता द्वारा किए गए दावे पर विवाद या विरोध नहीं किया था।

11. उच्च न्यायालय तब 21 मई, 2004 के पत्र ए-अनुलग्नक 24 की सामग्री से प्रभावित था, जिसमें उत्तरदाता ने एक निजी अधिवक्ता को नियुक्त करने की अनुमति मांगी थी। उच्च न्यायालय ने अपीलार्थियों द्वारा की गई याचिका को पूरी तरह से खारिज कर दिया कि यह दस्तावेज़ (अनुलग्नक 24), सैन्य न्यायालय कार्यवाही का हिस्सा नहीं था। इसलिए, सैन्य न्यायालय कार्यवाही के संचालन में शामिल अधिकारियों की प्रामाणिकता पर संदेह करने के लिए उत्तरदाता को कोई राहत देने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। दूसरी ओर, सैन्य न्यायालय कार्यवाही के अभिलेख से न केवल यह पता चला कि उत्तरदाता ने पूरी समझ के साथ और उसके परिणाम को जानते हुए दोनों आरोपों के लिए स्वेच्छा से अपना अपराध स्वीकार किया; लेकिन उसे अपने रुख पर पुनर्विचार करने का अवसर दिए जाने के बावजूद, उसने अपना इकबालिया बयान नहीं बदला। तथ्य के रूप में, 21 मई, 2004 के पत्र का संदर्भ पहली बार केवल उत्तरदाता द्वारा दायर प्रति शपथपत्र में दिया गया है। इस बारे में कोई ठोस स्पष्टीकरण सामने नहीं आ रहा है कि किस बात ने उत्तरदाता को सैन्य न्यायालय कार्यवाही में या कम से कम अधिनियम की धारा 161 के तहत सक्षम प्राधिकरण को उसके द्वारा की गई अपील में इस संचार को संदर्भित करने से रोका। उल्लेखनीय बात यह है कि मूल विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में भी ऐसा मामला नहीं बनाया गया था, जिसके कारण उत्तरदाता को ही पता होंगे। जाहिर है, उस याचिका को पहली बार प्रति शपथपत्र में लेना इस मुद्दे को भ्रमित करने के उद्देश्य से था, ताकि सैन्य न्यायालय कार्यवाही में पहले से दिए गए

स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति से पीछे हट सकें। इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। क्योंकि, इस तरह की विलम्बित दलील पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिए, वह भी लापरवाही से; और विशेष रूप से तब जब अपीलार्थियों ने आगे के शपथ पत्र में इस दावे के समर्थन में परिस्थितियों का उल्लेख किया था कि उत्तरदाता द्वारा भरोसा किया गया दस्तावेज़ एक जाली दस्तावेज़ है। उत्तरदाता को मूल प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था, जो उन्होंने कभी नहीं किया। न तो विद्वान एकल न्यायाधीश और न ही एफ खंडपीठ ने इस ओर से अपीलार्थियों की याचिका का विश्लेषण किया, और फिर भी सैन्य न्यायालय कार्यवाही के रिमांड का निर्देश देकर उत्तरदाता को राहत दी, इस निष्कर्ष के बावजूद कि उक्त दस्तावेज़ सैन्य न्यायालय कार्यवाही का हिस्सा नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तरदाता, जिसने अस्वच्छ हार्थों से न्यायालय का रुख किया था, उसे अनुचित लाभ मिल गया और उसे अपनी स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति से मुकरने का अवसर प्रदान कर दिया गया, जबकि यह तथ्य सैन्य न्यायालय कार्यवाही में संबंधित अधिकारियों द्वारा विधिवत दर्ज किया गया था, जिनकी सदभावना निर्विवाद है। उच्च न्यायालय को उत्तरदाता की इस दलील पर विचार नहीं करना चाहिए था कि उन अधिकारियों के नामों का खुलासा न होने और उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों का खंडन करने का अवसर न मिलने के कारण उन पर स्वीकारोक्ति के लिए दबाव डाला गया था। इसलिए, उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क भी विफल होना चाहिए।

12. उच्च न्यायालय के साथ अंतिम कारण भी सारहीन है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने केवल धारा 107 का उल्लेख किया है, बिना यह विश्लेषण किए कि कैसे उत्तरदाता को एक कोठरी में कैद करना उसका उल्लंघन था या उत्तरदाता के अपराध की याचिका को प्रभावित करेगा। वायु सेना अधिनियम, 1950 की धारा 107 इस प्रकार है:-

**"धारा 107**

107. बिना छुट्टी के अनुपस्थिति की जांच।--

(1) जब इस अधिनियम के अधीन कोई व्यक्ति बिना उचित प्राधिकार के अपने

कर्तव्य से तीस दिन की अवधि के लिए अनुपस्थित रहता है, तो यथाशीघ्र, एक जाँच न्यायालय सम्मिलित किया जाएगा और ऐसा न्यायालय, निर्धारित तरीके से शपथ या प्रतिज्ञान द्वारा, उस व्यक्ति की अनुपस्थिति और उसकी देखभाल में सौंपी गई सरकारी संपत्ति में, या किसी भी हथियार, गोला-बारूद, उपकरण, यंत्र, वस्त्र या आवश्यक वस्तुओं में, यदि कोई कमी है, तो उसके संबंध में पूछताछ करेगा और यदि वह बिना उचित प्राधिकार या अन्य पर्याप्त कारण के ऐसी अनुपस्थिति के तथ्य से संतुष्ट हो जाता है, तो न्यायालय ऐसी अनुपस्थिति और उसकी अवधि और उक्त कमी, यदि कोई हो, की घोषणा करेगा और जिस यूनिट से वह व्यक्ति संबंधित है, उसका कमांडिंग ऑफिसर यूनिट की कोर्ट-मार्शल बुक में घोषणा का अभिलेख दर्ज करेगा।

(2) यदि अनुपस्थित घोषित किया गया व्यक्ति बाद में आत्मसमर्पण नहीं करता है या पकड़ा नहीं जाता है, तो उसे इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए भगोड़ा माना जाएगा।"

उच्च न्यायालय द्वारा कोई कारण दर्ज नहीं किया गया है कि इस प्रावधान के कारण उत्तरदाता के खिलाफ एफ जांच को कैसे प्रभावित किया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त करते हुए कि उत्तरदाता को एक कोठरी में रखना इस प्रावधान के खिलाफ था, यह अभिनिर्धारित किया कि इसके परिणामस्वरूप उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना उत्तरदाता के जीवन के अधिकार पर अतिक्रमण होता है और इस प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 का उल्लंघन होता है। यह समझ से परे है कि वर्तमान मामले की तथ्यात्मक स्थिति में इस तर्क को कैसे कायम रखा जा सकता है। हालांकि, आधिकारिक अभिलेख, इस तथ्य की पुष्टि करता है कि उत्तरदाता 12 अप्रैल से 27 अप्रैल, 2003 के बीच अपनी आकस्मिक छुट्टी से अधिक समय तक रहा था, जो 28 अप्रैल, 2003 से प्रभावी था, बिना किसी पर्याप्त कारण के जब तक कि उसने 20 मार्च 2004 को आत्मसमर्पण नहीं कर दिया। आत्मसमर्पण करने के बाद, उत्तरदाता ने एक बार फिर छुट्टी के लिए आवेदन किए

बिना खुद को अनुपस्थित कर लिया जब तक कि उसे 30 अप्रैल, 2004 को जगतपुर, जिला भोजपुर, बिहार में पी एंड एस (यू), वायुसेना के भारतीय वायु सेना/पुलिस द्वारा गिरफ्तार नहीं किया जाता, और, इसके तुरंत बाद सैन्य न्यायालय कार्यवाही के माध्यम से आगे बढ़ाया गया, जिसकी परिणति दंड और सजा का आक्षेपित आदेश को पारित हुआ। इस प्रकार, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा बताया गया चौथा कारण भी सैन्य न्यायालय कार्यवाही को पलटने का आधार नहीं हो सकता, डीसीएम के समक्ष की गई कार्यवाहियों में उत्तरदाता द्वारा की गई स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति पर संदेह करना तो और भी कठिन है।

13. उच्च न्यायालय द्वारा सैन्य न्यायालय कार्यवाही की रिमांड के लिए कोई अन्य कारण नहीं बताया गया है। यहाँ तक कि खंडपीठ ने भी मामले पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार करने में विफल रहा और विशेष रूप से विनिर्दिष्ट आदेश याचिका का विरोध करने के लिए दायर दो जवाबी हलफनामों में अपीलार्थियों की याचिका की जांच करने में विफल रहा, जिसमें अनुलग्नक 19 और 24 की वास्तविकता का सवाल भी शामिल है। विशेष रूप से, खंडपीठ ने मूल अभिलेखों का अवलोकन किया और पाया कि पत्र सैन्य न्यायालय कार्यवाही का हिस्सा नहीं थे और जिला सैन्य न्यायालय के अधिकारियों ने सही और निष्पक्ष रूप से काम किया था, अपीलार्थियों की याचिका को स्वीकार करना चाहिए था कि ये पत्र (अनुलग्नक 19 और 24) विचार के बाद थे और किसी भी मामले में सैन्य न्यायालय कार्यवाही की वैधता और विशेष रूप से उत्तरदाता द्वारा किए गए स्वैच्छिक स्वीकारोक्ति पर सवाल उठाने का आधार नहीं बनाया जा सकता है।

14. हमारी राय में, वर्तमान मामले की तथ्य स्थिति में, उच्च न्यायालय ने उत्तरदाता को उन दो आरोपों के लिए सजा और दंड देने के सक्षम प्राधिकारी के आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करके स्पष्ट त्रुटि की, जिनके संबंध में उसने दोषी होने की दलील दी थी।

15. उत्तरदाता का विद्वान अधिवक्ता तब तर्क देते हैं कि यदि इस न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश को पुनर्जीवित किया जाना है, तो उसे कम से कम सेवामुक्ति के आदेश में

संशोधित किया जाना चाहिए - ताकि उत्तरदाता को वायु सेना में 13 वर्ष और 4 महीने की सेवा के लिए सेवानिवृत्ति लाभ मिल सके। यह प्रस्तुतीकरण पहली नज़र में आकर्षक प्रतीत होता है, लेकिन हमें स्वीकार्य नहीं लगता। जिस कदाचार के लिए उत्तरदाता को सजा सुनाई गई है और दंडित किया गया है, वह उसके द्वारा किया गया इस तरह का पहला अपराध नहीं है। अतीत में भी वह इसी तरह के कदाचार में लिप्त रहा है। इसके अलावा, उत्तरदाता अतीत में भी अपने वरिष्ठों के खिलाफ लापरवाह और तुच्छ आरोप लगाने में लिप्त था और वायु सेना में सेवा करने में पर्याप्त गंभीर नहीं था। 10 फरवरी, 2003 को अपनी शादी तय होने के बाद वह छुट्टी की अवधि से अधिक समय तक इस आधार पर रहे कि वह अस्वस्थ थे और उनका चिकित्सा उपचार चल रहा था। सक्षम प्राधिकारी ने सभी उपस्थित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बर्खास्तगी की सजा देने का फैसला किया। हम अपनी राय थोप नहीं सकते हैं या उस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्राप्त व्यक्तिपरक संतुष्टि को प्रतिस्थापित नहीं कर सकते हैं।

16. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क किया कि वायु सेना के कर्मियों पर लागू पेंशन विनियमों के अनुसार, उत्तरदाता अपनी पिछली सेवा के संबंध में पेंशन या उपदान के लिए पात्र नहीं होगा। इसके लिए उन्होंने भारत सरकार के उप सचिव द्वारा जारी दिनांक 25 अप्रैल, 2001 के परिपत्र का हवाला दिया, जो इस प्रकार है:-

25 अप्रैल, 2001

"सेवा में,

वायु सेना प्रमुख

विषय: वायु सेना पेंशन विनियम, 1961, भाग-1 के विनियम 16 और 102 में

संशोधन

महोदय,

1. मुझे यह निर्देश देने के लिए कहा गया है कि वायु सेना पेंशन विनियम (भाग-1),

1961 के विनियम 102(ए) के प्रावधानों के तहत, जिसे सीएस सं. 71/IV/67 द्वारा संशोधित किया गया है, वायु सेना अधिनियम के प्रावधानों के तहत जिसे भी वायुसैनिक को सेवा-मुक्त या बर्खास्त किया जाता है, वह अपनी पूर्व सेवा के संबंध में पेंशन और ग्रेच्युटी का पात्र नहीं होता, यद्यपि अपवाद स्वरूप मामलों में ऐसा किया जा सकता है। राष्ट्रपति अपने विवेकाधिकार पर उस दर से पेंशन उपदान प्रदान कर सकते हैं जिसके लिए वह अन्यथा योग्य नहीं होते यदि उन्हें उसी तारीख को छुट्टी दे दी जाती। कमीशन प्राप्त अधिकारियों के संबंध में ऐसे प्रावधान वायु सेना पेंशन विनियम (भाग-1), 1961 के विनियम 16 के अंतर्गत मौजूद नहीं हैं। प्रावधानों में असमानता पिछले कुछ समय से सरकार का ध्यान आकर्षित कर रही है।

2. अब यह निर्णय लिया गया है कि कमीशन प्राप्त अधिकारियों सहित सभी भारतीय वायु सेना के कर्मी जो अधिकारी वायु सेना अधिनियम, 1950 के प्रावधानों के तहत दंडस्वरूप सेवा से हटाया/बर्खास्त किए जाते हैं या वायु सेना नियम, 1969 के नियम 16 के अंतर्गत पद से हटाए जाते हैं/अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किए जाते हैं, अर्थात् दंड के रूप में वे अपनी समस्त पूर्व सेवा के संबंध में पेंशन या ग्रेच्युटी के लिए अयोग्य होंगे। अपवादस्वरूप मामलों में, हालाँकि, सक्षम प्राधिकारी को इस प्रकार की अपील प्रस्तुत किए जाने पर, वह अपने विवेक से पेंशन/ग्रेच्युटी या दोनों को उस दर पर स्वीकृत कर सकता है, जो अधिकतम उसी स्थिति में देय होती यदि उक्त व्यक्ति, जिसे दंडस्वरूप सेवा से हटाया किया गया/बर्खास्त किया गया/पद से हटाया गया, उसी तिथि को सामान्य तरीके से सेवानिवृत्त या सेवा-मुक्त किया गया होता।

3. जिस व्यक्ति को कदाचार के अतिरिक्त अन्य कारणों से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया जाता है या पद से हटाया जाता है, अथवा जिसे वायु सेना अधिनियम, 1950 एवं उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अंतर्गत सेवा से मुक्त किया जाता है, वह अपनी सेवा समाप्ति की तिथि पर देय पेंशन और/या ग्रेच्युटी का पात्र बना

रहता है। यह प्रावधान बर्खास्तगी/पद से हटाए जाने के मामलों पर भी लागू होगा।

4. इस संबंध में सक्षम प्राधिकारी के समक्ष की जाने वाली सभी अपीलें दंडस्वरूप सेवा से हटाया किए जाने/बर्खास्तगी/पद से हटाए जाने की तिथि से दो वर्ष के भीतर प्रस्तुत की जाएंगी।

5. कमीशंड अधिकारियों और पीबीओआर दोनों के लिए, वायु सेना पेंशन विनियम, 1961 के विनियम 16 और 102 के तहत सक्षम प्राधिकारी भारत के राष्ट्रपति होंगे।

6. वायु सेना के लिए पेंशन विनियमों में उचित समय पर उपरोक्त प्रावधानों के संबंध में संशोधन किया जाएगा।

7. इस पत्र के प्रावधान इस पत्र के जारी होने की तिथि से प्रभावी होंगे। तथापि, पूर्व के मामलों का निपटारा पूर्ववत् किया जाएगा।

आपका विश्वासी,

हस्ताक्षरित/- XXX

(अमृत लाल)

भारत सरकार के उप सचिव”

(जोर दिया गया)

हम इस विवाद पर कोई राय व्यक्त करने के लिए इच्छुक नहीं हैं क्योंकि हम पाते हैं कि असाधारण मामलों में पेंशन/उपदान या दोनों को मंजूरी देने के लिए सक्षम प्राधिकरण में विवेकाधिकार निहित है। भले ही उत्तरदाता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया हो, यदि उसे इस संबंध में सलाह दी जाती है, तो वह उस उपाय को अपनाने के लिए स्वतंत्र है। सक्षम प्राधिकारी उक्त अभ्यावेदन पर कानून के अनुसार विचार कर सकता है। हम पुनः स्पष्ट करते हैं कि इस संबंध में हमें किसी प्रकार की राय व्यक्त करने वाला न समझा जाए।

17. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह अपील सफल होनी चाहिए। अतः, माननीय एकल न्यायाधीश का 15 जुलाई, 2008 का निर्णय तथा 23 जून, 2009 की खंडपीठ का आदेश अपास्त किए जाते हैं। इसके स्थान पर, 17 जून, 2004 की सैन्य न्यायालय कार्यवाही तथा उसे लागू करने वाला 2 जुलाई, 2004 का आदेश पुनः बहाल और पुनर्जीवित किए जाते हैं।

18. बिना किसी लागत के आदेश के, अपील उपर्युक्त शर्तों के अनुसार स्वीकार की जाती है।

अपील की अनुमति दी गई।

अंकित ज्ञान

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।